गंधर्व के दर्शन से निकलता मोक्ष का रास्ता

दिलीप चिंचालकर

उनके बारे में सोचते हुए क्या अगल–बगल के दो का विचार मन में आने देना संभव है? नहीं। तो फिर लिखते समय उन्हें टालना मेरे बस में नहीं। वैसे ही जैसे क्षितिज की कल्पना बगैर आकाश और धरती या समुद्र के मुमकिन नहीं। पास–पास लगे हुए वे तीन वृक्ष मेरे लिए एक पूरी अमराई थे। एकसंध उनकी छाँव थी। यहाँ से वहाँ तक निकल जाने पर भी उनका कोई अंत नहीं था। उनकी शाखाएँ भी कुछ इस तरह आपस में गुँथी हुई थी कि आसानी से भेद नहीं हो पाता। इसीलिए कुछ ऐसा भी था कि उस एक की सघन टहनियों में से भीतर प्रवेश संभव नहीं हो तब अन्य दो की अपेक्षाकृत सरल सीधी टहनियों पर पैर जमा कर पहले के भीतर झाँका जा सकता था। कहना न होगा कि कुमारजी के संदर्भ में इशारा राहुल बारपुते और विष्णु चिंचालकर की ओर है।

जब तक वृक्ष धराशायी नहीं हो जाते उनका कद नापा नहीं जा सकता। तब तक नीचे ठण्डी़ बयार का आनंद लेने वाला डालियों पर चहकते पक्षी और पत्तों–पत्तों में गुनगुनाते भौरों को सुन सकता है। लगातार नीचे टपकते रसीले फलों को चख सकता है। एक चीज वह नहीं देख पाता वह है फुनगियों से ऊपर निकलती पताका जो दूर से देखने वाले को बताती है कि उन पेड़ों में देवताओं का वास है। नीचे बैठने वाले को इसका भान बहुत बाद में होता है।

मेरी सबसे पहली याद देवास के मोती बंगले में इस सोहबत में एक तूरे खट्टे दिव्य पेय की है। उम्र रही होगी दो कच्चे हाथों की उँगलियों से कम। यों उसकी दरकार न थी। या रही होगी तो बतौर इनीसिएशन, प्रतीकात्मक। क्योंकि देर सवेर अमराई के माहौल में घुले कला–साहित्य–संगीत के सुरूर का अपने आप अंदर पैठना अवश्यंभावी था।

यह सुरूर सुरीलेपन का था जो छाँव हट जाने के बाद कड़ी धूप में भी छाँव का आभास देता और लू लगने से बचाता रहा। कला और साहित्य ने बंदे के जीवन को बराबरी से अपनी गिरफ्त में रखा। लगा दोनों की खीचतान में सरगम का स छू भी न

पाया। इस अफसोस के साथ जब मन में झाँका, पीछे मुड़ के देखा तो अंदर की नीरवता में तानपूरे का गुंजन सुनाई दिया। कुमारजी का तानपूरा जिसका गुंजन अपने आप में मुकम्मिल गायन था। इसे उन्हें अपने उन दो सुधि श्रोताओं को सुनाते हुए मैंने कभी देखा था। तब समझ में नहीं आया लेकिन स्मृति में रह गया था।

सुनने के साथ देखना इसीलिए भी जरूरी है। वह फोटोग्राफिक फिल्म पर एक्सपोजर की तरह है। समय के साथ स्थितियों के रसायन से जब वह डेवलप होता है तो पुरानी बात भी बारीकियों के साथ बात स्वमेव उभर आती है।

मलाल इस बात का है कि मैं कला या साहित्य, किसी का भी नहीं हो पाया। खुशी इस बात की जरूर है कि उस क्षितिज समान पतली संगीत रेखा ने, निस्तब्ध रह कर सुनाई देने वाले तानपूरे के गुंजन ने, उन दोनों नैयाओं में तालमेल बनाए रखा जिन पर मैं सवार रहा। इस बात को और अधिक स्पष्टता की जरूरत है मगर पहले कुमारजी की पेटी की बात।

मराठी में पेटी हारमोनियम को कहते हैं। कुमारजी के तानपूरे की तरह ही अद्‌भुत थी कुमारजी की पेटी। उनकी सारी बंदिशों से वाकिफ होने का दावा न भी करूँ तो भी पेटी का जिक्र उससे रूबरू न हो पाने का जाति तौर पर धक्का देने वाला था। कुछ पल के असमंजस के बाद सही, यह रहस्योद्‌घाटन कि कुमारजी की पेटी का वास्ता उनकी प्रवासी संदूक से है, उतना ही राहत देने वाला था जितना की विस्मित कर देने वाला उसका नजारा था। जरूरत की हर वस्तु का अपना स्थान होना – सुव्यस्थित और प्राथमिकतानुसार। एक बार समझ में आने के बाद पेटी का दर्शन हर जगह सिध्द पाया। मंच पर गायन के समय सम्मुख रखी पर्चियाँ लगी बंदिशों की डायरी से लेकर, उनके व्दारा स्नान पश्चात खाली किए गए गुसलखाने तक। कुमारजी कार्यक्रम से पहले समय–काल के अनुसार राग और बंदिशों का चुनाव और उनका क्रम पहले से ही तय कर लेते थे। जिससें न कोई फेरबदल होता था न फर्माइशों की गुंजाइश। उसी तरह उनके बाहर निकलने बाद स्नानागार हमेशा स्वच्छ, निथरा और करीने से जमाया हुआ मिलता। एक बेतरतीब यजमान को शर्मसार करने की हद तक, यदि उसमें इतनी संवेदनशीलता विद्यमान है तो। इस मान्यता के चलते कि चित्रकार अव्यवस्था में ही सर्जन कर पाता है, कुमारजी की पेटी ने कई बार मुझे मेरे ध्येय से डिगाया है। उनके तानपूरे को सुनने की लालसा ने वाचाल बुध्दिजीवियों की जमात में उद्दंड समझे जाने की हद तक चुप कराया है।

आत्मीयता–निस्पृहता का एक परस्पर विरोधाभासी भाव मैंने उनमें हमेशा पाया। कमल के पत्ते की तरह जो पानी में है और पानी से अलग भी। उनसे निकटता रही लेकिन उनके आभामण्डल को छेद उनको छू नहीं सका। स्वयं को परिस्थिति से अलग रखने का यह आलम है कि दूसरे तो उनके रचे मायाजाल में गोते लगा रहे होते हों और वे शांत भाव से उन्हें निहारते रहें। एक वाकया बड़ौदा के ख्यात वास्तुविद के आवास का

है। उनसे परिचय का रौब गाँठने के लिए यजमान ने चार अन्य मेहमानों को निमंत्रित कर रखा था। सुहानी शाम का आयोजन था। कुमारजी ने पहले से ही हमें यानी अपने दो अनन्य मित्रों और हम जैसे दो को शिवप्रिया का प्रसाद दे रखा था। किसी कल्पित महफिल में मेंढकों व्दारा लिए जाने वाले आलाप का पूर्वाभास उन्होंने दे रखा था। हमारे उपयुक्त परिस्थिति को प्राप्त होते ही वे बाजे पर अजीब ध्वनियाँ निकालने लगे। प्रसाद के प्रभाव से हमारी कल्पना कुलाँचे भरने लगी और हम लोटपोट हो गए। वरिष्ठ मित्रों का संयम भी जाता रहा। दूसरे पक्ष के मेहमान और यजमान असंमजस में थे और कुमारजी मंद मुस्काते हुए उत्पन्न स्थिति का आनंद ले रहे थे।

कुमारजी की कही एक बात सदा के लिए मन में पैठ गई है। वह यह कि पृथ्वी पर निवास करने वाले सारे मानव परमेश्वर के किराएदार हैं। उस जगन्नियंता का किराया हमें हर महीने चुकाना है, धन से नहीं, सद्‌गुणों की परवरिश करके। इस फलसफे ने अहसास दिलाया कि मुझे प्राप्त दो विधाएँ दो पितृपुरूषों का आशीर्वाद है। तीसरे का दिया यह ज्ञान है कि प्रकृति प्रदत्त विधाएँ मात्र उदरभरण का साधन नहीं, जीवन समृध्द करने और किराया भरने का तरीका है। तभी यह गंधर्व मन पर बिना बोझ पाले गा सकता था – ज्यों की त्यों धर दीन्ही चदरिया।

* * *